International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 18-06-2019; Accepted: 21-07-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 32-36

कविता में स्त्रीः पराधीनता, पीड़ा और विद्रोह

डॉ0 सरिता मिश्रा
आर्य महिला पी0जी0कॉ0, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी संक्रमण के दौर से गुजर रही है। तकनीकि समृद्धता और संचार माध्यमों की उपलब्धता ने सामाजिक, आर्थिक व भाषायी असमानताओं की खाई को पाटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। वैज्ञानिक प्रगति के इस असाधारण सदी में जब मानव धरती से इतर कहीं सुदूर ग्रहों पर अपना आशियाना बनाने की फिराक में हैं तब साहित्य भी अपने बहुअयामी स्वरूप में विस्तार एवं प्रत्येक उन मुद्दों की समीक्षा का साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा है जिन पर पूर्वकाल में बहुत कुछ कहा–सुना नही गया है। वर्तमान समय साहित्यिक दृष्टि से विमर्शों की सदी भी कही जा सकती है। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, जेंडर विमर्श, स्त्री विमर्श आदि बहुप्रकाशित, बहुश्रुत और चर्चित हैं। स्त्री विमर्श का मुद्दा भी साहितय जगत में अत्यन्त समाचीन और असाधारण रूप में विस्तार पा चुका है। चूँकि भाषायी दीवारें, जमींदोज हो चुकी हैं और सम्प्रेषण के माध्यमों की तीव्र प्रगति ने विचारों के आदान–प्रदान को सुलभ बना दिया है। अतः प्रत्येक मुद्दा, अब किसी देश जाति अथवा भाषा की बंधक न होकर सार्वभौमिक और अविच्छिन्न हो गयी है। जाति–पांति, ऊँच–नीच, स्त्री–पुरूष, समय–समाज आदि सभी विमर्श के दायरे में है। जहाँ तक स्त्री विमर्श की बात है तो सृष्टि आरम्भ से ही स्त्री विमर्श का केन्द्र बिन्दु रही है। सृष्टि संवधर्न के दो महत्वपूर्ण उपादानों में स्त्री अतिविशिष्ट स्थान पर विराजमान है। वह स्त्रष्टा है और इस अन्तर्निहित विशिष्टता का सारा श्रेय केवल और केवल स्त्री को जाता है। इस भूमिका का निर्वहन तब से आज तक उसने उसी खूबी से किया है, जिस खूबी से उसका प्रादुर्भाव हुआ है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानव सभ्यता के आदि पुरूष और आदि स्त्री (मनु एवं शतरूपा) के मध्य प्रेम के अंकुरण और यथोचित सामंजस्य के परिणाम स्वरूप सृष्टि का आरम्भ होता है और पूर्ण सम्मान व स्वाभिमान के साथ स्त्री आगे बढ़ती है। अर्थात मूलतः दो स्वतंत्र सत्ताओं (मातृ एवं पितृ) की स्वेच्छा और दृढ़ निश्चय के आलोक में सृष्टि का सृजन होता है जो कहीं भी एक दूसरे पर अवलम्बित नहीं है। कालान्तर में कुनबे का विस्तार और सभ्यता की नींव पड़ती हैं जीवन के लिए आवश्यक तत्वों के अनुशीलन और क्रमिक विकास की ओर अग्रसरित मनुष्य जीवन निर्वाह की सुगमता और कार्य व्यापार के सरल संचालन हेतु आचार संहिताओं (मौखिक संवैधानिक नियमों) का निर्माण करता है। जिसमें प्रत्येक अपनी मौलिकताओं और विशिष्टता को अक्षुण्ण रखते हुए विहित कार्यों के प्रति निष्ठा का आचरण अपनाते शनैः शनैः जीवन आनन्द को आत्मसात् करते हैं। सहस्त्राब्दियों तक काल के प्रवाह में बहते हुए स्त्री अपनी स्वतंत्र सत्ता को अतिशय करूणा, दया और मोह–पाश के अधीन हो अक्षुण्ण नही रख पायी या तो उसने इन अन्तनिर्हित गुणों जिन्हें आज के समाज में कमजोरियों का प्रतीक माना जाता हैं के तीव्र आवेग में तरल होकर पितृसत्ता की अधीनता में चले जाना सहर्ष स्वीकार कर लिया अथवा पुरूष के ऐन्द्रजालिक षडयंत्रों के आगे घुटने टेक दिये और उसके वर्चस्व को स्वीकार कर लिया। स्त्री पराधीन हो गयी। जो शक्ति का स्रोत थी, स्त्रष्टा थी 'अबला' हो गयी। जो सृजन की साक्षी थी, विनाश और कुंठा के प्रच्छन्न मार्ग सहगामिनी बन गयी। सृष्टि निर्माण की श्रेयसी होने के उपरान्त उसने किन्ही परिस्थितियों में सहधर्मिणी के तमगे तक ही अपने को सीमित कर लिया।

पुरूष सहचर न होकर अपने को विजेता मान बैठा और 'पति' रूप में प्रतिष्ठित हो गया। लेकिन स्त्री ने आज भी पुरूष के मोहपाश की जकड़न से मुक्त न होकर उसको पतन से बचाने के कल्याणकारी मार्ग का चयन किया और 'पत्नी' कहलायी। यह वही समय था जब पुराणों का निगमन तेजी से हो रहा था। सभ्यतायें तिरोहित होकर संहिता सम्मत व्यवस्थाओं के विरूद्ध स्वरित हो नये–नये मार्गों का अनुसरण कर, जातियों का सृजन कर रही थीं। अत्यधिक आडम्बरपूर्ण जीवनचर्या और पाखंडपूर्ण आचार के विरूद्ध लोग लामबन्द हो नये–नये सम्प्रदायों का आश्रय स्वीकार करने लगे थे। समाज कुलों, गोत्रों, जातियों, उपजातियों में विघटित हो नये–नये नियमों का सृजन कर, वर्जनाओं का त्यागकर, नये धर्मों, नयी प्रणालियों को स्वीकार करने लगा था। सक्रमण के दौर से गुजरती हुई स्त्री की अस्मिता, स्त्री की स्वतंत्रता, लुप्त होने लगी और वह भोग की वस्तु तक समिति हो गयी। ऐसा नहीं है कि अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए स्त्री ने विरोध के स्वर नहीं मुखरित किये लेकिन पुरूष वर्चस्व और प्रभुत्व के पाखंडपूर्ण तीव्र–नाद में यह विरोध के स्वर अनसुने कर दिये गये। यत्र–तत्र स्त्री की प्रबलता के विरूद्ध बनाये गये नियमों की बानगी दिखायी पड़ जाती है। नीतिकार लिखता है

यतऽबला च प्रबला, बालौ राजा मूर्खमंत्री
तत्र न कोऽपि जीवनं दुर्लभं अस्ति
अपितु असंभवम् भविष्यति।
(भर्तृहरि नीतिशतकम)

इस प्रकार इस दौर तक यदि स्त्री की महत्ता कहीं भी स्थापित थी तो पुरूष वर्चस्व के सामने उसे ठिगना प्रस्तुत करने के लिए नीतियों का अवलम्ब लेकर उसे 'अबला' के शाब्दिक अर्थ तक समेटने का कुचक्र रचा गया। इस इहलौकिक दुष्चक्र में साहित्य सर्जको और नीति–नियंताओं ने महती भूमिका अदा की। यत्र–तत्र पुरूष की इस कपट पूर्ण और त्याज्य माने जाने वाले क्रिया–कलापों के विरोध के अस्फुट स्वर सुनायी पड़ते है। जैसे काशि राज की कन्या अम्बा का अत्यन्त सशक्त राज्य हस्तिनापुर के समर्थ राजकुमार भीष्म के विरूद्ध शंखनाद स्त्री संघर्ष और अस्मिता के रक्षार्थ प्रभावी विद्रोह की कथा कहता है। लेकिन इस काल तक स्त्री उपभोग की वस्तु मात्र होकर रह गयी थी। उसकी पीड़ा अब कराहन लगी थी और धीरे–धीरे व्यवस्था के विरूद्ध स्त्री का संघर्ष स्वर तीव्र होने लगा था। मध्यकाल तक आते–आते पुरूष सत्ता के विरूद्ध स्त्री के अस्फुट स्वरों के संकेत मिलने शुरू हो गये। इन विरोध के स्वरों में कुछ गिने–चुने पुरूष बौद्धिकों ने भी अपने रचनाओं के माध्यम से स्त्री के स्वर में स्वर मिलाकर उसकी आवृत्ति को तीव्रता प्रदान की। स्त्री की पीड़ा,

उसकी वेदना, उसके विद्रोह के स्वर में कूटस्थ हो कविता के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत हुआ।

मध्यकालीन साहित्य में स्त्री के विभिन्न रूपों का निदर्शन होता है

कबीर की स्त्री जहाँ एक ओर पतिव्रता है वहीं दूसरी ओर पतिता, कुपथ–गामिनी है। पतिता कौन है? जो वेद–विहित मर्यादा पालन नहीं करती है। समाज के बन्धनों का दास नहीं हैं। पुरूष सत्ता के विरूद्ध आचारण करती है। कबीर समाज सुधारक हैं। फिर भी उन्होंने जो स्त्री संबंधी विचार प्रस्तुत किये हैं, उनमें उसकी परवशता ही नजर आती है। समाज में व्याप्त अवधारणाओं में इस तरह स्त्री स्वतंत्रता, उसके अस्मिता और स्वाभिमान के विरूद्ध है। उसके हिस्से केवल पीड़ा को छोड़ कुछ नहीं बचता। कबीर कहतें हैं–

नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासैं होई।
भगति मुकति निज ग्यान मै पैसि न सकई कोई।।

कबीर जिन्होंने समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों, कुप्रथाओं और कुसंस्कारों को त्याज्य बताया है, जिन्होंने स्वयं ब्रह्म मिलन की आस में अपने आप को स्त्री स्वरूप में रखकर पिया–मिलन की उल्लासमयी लोलुपता के आश्रय को श्रेष्ठ माना है, उन्होंने ने भी नारि की पीड़ा को अंगीकार नहीं किया है। उसे वैसे ही व्यथित, पीड़ित, त्याज्य ही करार दे दिया है। जिन्होंने सारा जीवन रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्ष किया, स्त्री के परिप्रेक्ष्य में समाज के कुत्सित अवधारणाओं को पुष्ट कर उसके मर्म को और पीड़ित किया है। वे कहते हैं कि स्त्री 'नक्र का द्वार' है, भले उनकी यह मंशा साधना–पथ से विचलन के अर्थ में ही हो। यदि पारलौकिक अर्थ न ग्रहण करें तो स्त्री को वह माया मानते हैं और संकेत करते हैं–

माया महाठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोरै
बोलै मधुरि बानी।
(कबीर ग्रन्थावली)

कबीर जिनकी चेतना प्रगतिशील है के स्त्री–संबंधी विचार ने उसे पराधीनता, निराशा, वैषम्य, पीड़ा और विद्रोह की अग्नि में झोंकने का काम किया है। स्त्री मुक्ति का महत्तर कार्य उन्होंने भी स्त्री के ही कंधे पर पूर्ववत रहने दिया है।

जायसी के काव्य में स्त्री के उदात्त स्वरूप का वर्णन है। चूंकि जायसी एक सूफी कवि हैं और काव्य का सर्वोपरि चरित्र पद्मावती ही है। जो सर्वगुण–सम्पन्न है, रूपवती है। जायसी की स्त्री संबंधी अवधारणा सौन्दर्योपासना को समर्पित है। चूंकि पद्मावत की नायिका अनुपम सौन्दर्यशालिनी है अतः उनकी स्त्री चेतना लौकिक से ज्यादा पारलौकिक की ओर झुकती हुयी दिखायी देती है। असाधारण रूपसी पद्मावती इहलौकिक हो ही नहीं सकती जैसा कि जायसी ने खुद संकेत किया है–

इते रूप भै कन्या, जेहि सर पूज न कोइ
धनि सो देस, रूपवंता, जहाँ जन्म अस होइ
(पद्मावत)

जायसी के काव्य में स्त्री वस्तुतः पतिव्रता है। वह स्त्री के रूप सौन्दर्य में ईश्वरीय प्रभाव पाते हैं। जिसे पाने के लिए सूफीमत में संसार के तमाम बन्धन बाधक हैं। जायसी के काव्य में सूफीमत के अनुरूप दो नायिकाओं के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों का अभाव है। रामचन्द्र तिवारी के अनुसार–

'सूफियों' ने अपने साध्य परम तत्व को परम सौन्दर्य के रूप में देखा और नारी सौदर्य में उसका प्रतिबिम्ब अनुभव किया। [2] जायसी यद्यपि स्त्री के प्रति ईश्वरीय भाव रखते हैं तथापि उस समय भी परिवार, कुल, गोत्र आदि ऐसे बंधन हैं। जिससे यह कहा जा सकता है कि उनकी नायिका भी पराधीन ही है। परिवेश चाहे जो हो स्त्री की पीड़ा की स्थिति मध्यकालीन समाज में सर्वत्र एक सी है और वह भोग की वस्तु ही समझी जाती है। उसकी मनोदशा का संकेत उमा चक्रवर्ती के इस कथन से भी मिलता है– ''विश्व के अधिकतर हिस्सों के दर्ज इतिहास की अधिकांश अवस्थाओं में स्त्री पराधीनता का वजूद रहा है लेकिन इस पराधीनता की हद और स्वरूप का निर्धारण सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारक करते रहे हैं। दूसरे शब्दों में स्त्री का परिवेश उसकी पराधीनता की प्रवृत्ति को तय करता है। [3]

सूर के काव्य में स्त्री के स्वच्छन्द रूप का वर्णन मिलता है। वह लोक और वेद के बंन्धन को नहीं मानती। वह मातृ, पुत्री अथवा प्रियतमा के रूप में विद्यमान है। प्रेम उसके लिये सर्वस्व है। सूरदास ने स्त्री के अन्तर्निहित दिव्य गुणों के यथार्थ चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त की हैं उनकी स्त्रियाँ प्रेमासक्त, वात्सल्यासक्त और निर्भीक हैं। उन्हें श्रीकृष्ण के दिव्य प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी स्वीकार्य नहीं है। वह उन्मुक्त भाव से प्रेमोपासना को ही समर्पित हैं। सूर की ये स्त्रियाँ प्रेम मार्ग अनुसरण कर पुरूष द्वारा लाद दिये गये प्रतिबन्धों को धता बताकर स्वतंत्र विचार और अस्तित्व के अवलम्ब को स्वीकार करती है। सूर ने स्त्रियों को बंधनों की चहारदीवारी से निकाल लाने के लिए पुरूष जनित आडम्बर के विरूद्ध परमपुरूष के प्रेम को श्रेयस्कर सिद्ध कर उनकी अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष को नयी धार दी है। सूर की स्त्रियों का प्रेम एकनिष्ठ है। शाश्वत है। उनके प्रेम की उन्मुक्तता में भी विरह का एकाकी भाव है जो उन्हें पारलौकिक की ओर खींच ले जाता है। वियोग श्रृंगार का वह पक्ष है जिसमें एकात्म की साधना समाहित है। वियोग में मिलने की वह तीव्र उत्कंठा है जो स्त्री मन वेदना का उत्कृष्ट रूप है जिसमें संयोग की कामना अनुप्राणित है। सूर की स्त्रियाँ स्वाभिमानी है। उनका प्रेम उदात्त तो है लेकिन ओछा नहीं। संयोग की कामना से उल्लसित तो है लेकिन उसे प्राप्त करने के लिए उच्श्रृंखल नहीं। वे उस पारलौकिक प्रेम को प्राप्त करने के लिए अपने सब कुछ का त्याग कर देती हैं लेकिन उनकी कामना यही है कि उनके कृष्ण स्वयं उनके प्रेम को, उनके स्वत्व को, निजत्व को आकर स्वीकार करें और उनके स्त्रीत्व और अस्मिता के महत्व को प्रतिष्ठित करें। वे अपने आराध्य से मिलने मथुरा नहीं जाती हैं। विरह की चरमावस्था में भी उन्होंने अपने आत्मभिमान को डिगने नहीं दिया। वे श्रीकृष्ण के मथुरा से आकर उनसे मिलने की अपेक्षा करती हैं। 'उद्धव' के ज्ञान, योग संबंधी तमाम तर्को को खारिज करती हैं। वे कहती हैं कि 'यद्यपि' वे विरही हैं परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे नारी के गत्वर स्वरूप से अपने को विरत कर सकें– यह गर्विता का विद्रोह ही तो है, व्यवस्था के विरूद्ध। जिसमें प्रेम सर्वस्व तो है लेकिन दीन नहीं है। इस प्रकार उन्होंने प्रेम के उच्चतम मानदण्डों को स्वीकार किया है उनकी व्यथा, उनकी विवशता निःसीम है, फिर भी उन्हें उद्धव के ज्ञानयोग में कठोरता और शुष्कता के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई देता। वे उद्धव के ज्ञानाभिमान को निरर्थक सिद्ध करके उन्हें निरूत्तर कर देती हैं। वे अत्यन्त निरभिमानी भाव से कहती हैं–

उधौ जोग जोग हम नाहीं
अबला सार–ज्ञान कह जानैं कैसे ध्यान धराहीं
तेई मूँदन नैन कहत हौं, हरि मूरत जिन माहीं
(सूर सागर)

सूर की स्त्रियाँ जिस सरलता से उद्धव के ज्ञानी होने के भ्रम का निवारण कर देती हैं और प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित करती करती है, उद्धव के पास उसका कोई उत्तर ही नहीं है।

तुलसी की कविता में स्त्री का विराट स्वरूप है। उन्होंने भक्तिकाल में स्त्री के जिस भक्ति अनुप्राणित, ममतामयी, त्यागमयी और गर्वित स्वरूप की विशद व्याख्या की है वह अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। अपने काव्य में तुलसी ने स्त्री को सर्वोच्च पारलौकिक दिव्यता से अनुप्राणित चित्रित किया है। जहाँ एक ओर वह वात्सल्य के प्रतिमूर्ति है, वहीं वह त्याग का साक्षात विग्रह है। उनका 'रामचरित मानस' स्त्री चेतना से परिपूर्ण महाग्रन्थ है। जिसमें स्त्री के प्रत्येक रूप की विस्तृत अभिधारणा प्रस्तुत की गयी है। परन्तु स्त्री के विभिन्न रूपों में भी उसके पीड़ा का जो निचोड़ तुलसी ने प्रस्तुत किया है वह शायद उस रूप में पुनः संभव नहीं है। तुलसी की यह चौपाई नारी जीवन की सारी पीड़ा, सारी व्यथा का आसवित रूप है–

कत विधि सृजी नारि जग मांही
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।
(राम चरित मानस)

रानी कैकेयी का पति को विवश कर, राजसत्ता को पंगु बना, अपने अधिकारों के प्रति अत्यन्त सजग हो, राम के राज्यभिषेक को रोककर उन्हें वन जाने के लिए मजबूर करना स्त्री का पुरूष सत्तात्मक व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह नही तो और क्या है? सीता का पुरूष समर्थित समाज के बन्धनों और नियमों की उपेक्षा कर पति के साथ वन में जाना क्या स्त्री का विद्रोह नहीं है? पति के आदेशों और मर्यादा को चुन करके उर्मिला ने क्या पीड़ा का वरण नहीं किया? क्या कौशल्या, सुमित्राा, माण्डवी, आदि ने सब कुछ सहकर स्त्री अधिकारों के प्रति विवशता का प्रश्न नहीं उत्पन्न किया? तुलसी ने रामचरित्र मानस में स्त्रियों के जितने रूपों को उद्घाटित किया है उनमें तारा, मंदोदरी, सूपर्णखा, त्रिजटा व लंकिनी भी है। इन विभिन्न रूपों में उन्होंने स्त्री की पराधीनता और उसके विद्रोह के विभिन्न आयामों की व्याख्या की है। स्त्री अधिकारों के प्रति सजग और व्यवस्था से कुपित नारी चैतन्यता का अन्यतम रूप मन्थरा नहीं है, क्या उसे इस रूप में नही देखा जाना चाहिए? क्या इन स्त्रियों के विभिन्न रूपों में, उनके विभिन्न चरित्रों में नारी की विवशता उसकी व्यथा के दर्शन नहीं होते हैं? अपनी माता कैकेयी के लिए भरत का यह कहना कि 'विधिहु न नारि ह्रदय गति जानी। सकल कपट अध अवगुन खानी'। क्या तत्कालीन मध्य भारत में स्त्री की स्थिति, उसके प्रति पुरूष समाज की धारणा का पता नहीं चलता? क्या उस समाज में स्त्री स्वतंत्रता के विरोध का प्रबल प्रमाण यह उक्ति नहीं है कि–

महावृष्टि चलि फूटि कियारी।
जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहीं नारी।।
अथवा
बुधि बल सत्य शील सब मीना।
बंशी सम तिय कहहिं प्रवीना।।
(राम चरित मानस)

उस समय के समाज व बुद्धिजीवियों के मानसिक स्तरों का उद्घाटन नहीं करता। अतः तुलसी ने राम कथा के माध्यम से समकालिक स्त्री की मनोदशा, उसकी सामाजिक, राजनीतिक स्थिति का चित्रण कर उसकी व्यथा को समाज के सामने लाने का प्रयत्न किया है।

मीरा पहली स्त्रीवादी कवयित्री हैं। जिन्होंने पुरूष वर्चस्व व युगीन भ्रामक विचारों के विरूद्ध सशक्त विद्रोह का सूत्रपात किया। उस समय स्त्री परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुयी थी। वह पुरूष के दृष्टि से देखी जाती थी। समाज व मान्यताओं के विरूद्ध कुछ भी अभिव्यक्त करना जोखिम का कार्य था। मीरा ने तत्कालीन समाज में स्त्री आत्माभिमान के लिए कुल की मर्यादा और राजसत्ता के विरूद्ध उसी के भीतर से आवाज बुलन्द की। राजपरिवार ही युगीन परम्पराओं रूढ़ियों और पाखण्ड के पोषक थे। जिनकी आन–बान–शान के विरूद्ध जा पाना एक साहसिक और कठिन कार्य था। मीरा ने इहलौकिक सत्ता का निषेधकर पारलौकिक सत्ता का चयन किया और स्त्री की पीड़ा और स्वाभिमान को मुखरित किया। स्त्री को पराधीन बुना देने वाली पितृसत्तात्मक समाज के विरूद्ध विगुल फूँका और अपने ऊपर लगाये आरोपा का उन्होंने दृढ़ता से सामना किया। उनका विरोध केवल पितृसत्तात्मक सत्ता के कुरीतियों के खिलाफ था। उन्होंने मानवीय रूप की सकारात्मकता का कोई विरोध नहीं किया। समाज द्वारा आरोपित प्रत्येक कुरीतियों और कुप्रथाओं का मुखरित हो उन्होंने उत्तर दिया। वे कहती हैं–

मोहे वा बदनामी लागै मीठी
कोई बिन्दो–कोई निन्दो
मैं चाल चलूँगी अपूठी। [4]

स्त्री स्वाभिमान, मर्यादा के इस संघर्ष में उन्होंने अपने रिश्तो–नातों परिवार, कुलकानि किसी की चिन्ता नहीं किया। जो भी उनके स्वाभिमान के रास्ते में आया उसका त्याग किया और उनकी यह दृढ़ता उनके व्यक्तित्व को और विराट बनाता चला गया। विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं– ''तुलसी क्या कबीर और सूर की अपेक्षा भी मीरा का रचना–संसार सीमित है। किन्तु वह किसी के अपेक्षा कम विश्वसनीय नहीं, इसका कारण यह है कि मीरा ने नारी जीवन के वास्तविक अनुभवों को शब्द बद्ध किया है।'' [5]

उनके संकल्प और व्यक्तित्व की दृढ़ता का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि राजसत्ता जो कि शासन का केन्द्रीय स्वरूप है के विरोध की उन्होंने तनिक भी परवाह नहीं की। मर्यादा और लोकलाज की दुहाई देकर स्त्री के मौलिक अधिकारों के हनन पर उन्होंने चुटीला व्यंग्य किया

''लोक–लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।। [6]

''मैं अबला बौराणी'' एक स्त्री के कोमल मन की वेदना का प्रमाण है और उस व्यवस्था पर बहुत बड़ा आघात है जिसमें सृष्टि संचालन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्तम्भ का स्त्री स्वतंत्रता के प्रति इस पुरूष–प्रधान कुव्यवस्था के विरूद्ध मुखर आवाज है। मीरा की व्यथा उनकी अपनी नहीं स्त्री की पीड़ा है, जो उन्होंने अपने जीवनानुभवों के प्रकाश में व्यक्त किया है। स्त्री की कराह, उसकी वेदना का प्रस्फुटन है, जो उन्होंने पारलौकिकता का आश्रय लेकर अभिव्यक्त किया है। जिस जीजिविषा और दृढ़ भाव से मीरा ने स्त्री सरोकारों, स्त्री स्वतंत्रता और पुरूष सत्तात्मक समाज के विरूद्ध मध्यकालीन रूढ़िगत सामाजिक ताने–बाने के भीतर से प्रथम विरोध दर्ज कराया स्तुत्य है।

रीतिकाल में स्त्री के बाह्य सौन्दर्य के प्रति अधिक चर्चा है। उनके आन्तरिक सौन्दर्य का अंकन भी इस काल की कविताओं में मिलता है परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं मिली है। इस काल की श्रृंगारिकता और अलंकार प्रियता अत्यधिक ख्यात है। उदाहरण के लिए आचार्य केशव का यह विचार द्रष्टव्य है।

जदपि सुजातिः सुलक्षिनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई कविता वनिता मित्त ।।
(आचार्य केशव)

इससे प्रकट होता है कि इस काल में आन्तरिक सौन्दर्य महत्वपूर्ण नहीं है। इस काल में नारी के सभी अंगों का वर्णन अलंकारिकता के साथ उपलब्ध है। स्त्रियों का कामिनी और रमणी रूपों में देखा जाना स्त्री की दशा का परिचायक है अर्थात् इस काल में भी स्त्री उपभोग की एक वस्तु मात्र है। उस काल की प्रमुख प्रवृत्ति डॉ0 बेंकटरमण राव की दृष्टि से विवेचित होती है–

''श्रृंगार रस को को अभिव्यक्ति देने के लिए नारी को सौन्दर्य आवरण से मुक्त कर उसके विलासी व नग्न चित्रण को प्रमुखता दी गयी। समस्त रीतिकालीन साहित्य पुरूष की दृष्टि से लिखा गया है। नायिका भेद निरूपण में पुरूष का स्वार्थ पद–पद पर अंकित है। नारी उसके विलास की सामग्री के रूप में चित्रित की गयी है''। [7]

रीतिकाल में जहाँ एक ओर पुरूष कवियों ने स्त्री मांसलता और स्त्री सौन्दर्य के बाह्य विवेचना में अपने को प्रवृत्त किया वहीं रीतिकाल की स्त्री रचनाकारों ने इनके स्वर में स्वर न मिलाकर कविता की बिल्कुल अलग दिशा का चयन किया है। इन कवित्रियों ने निर्गुण काव्य धारा की ओर मुडकर इनके विचारों से अपनी असहमति व्यक्त की है। दयाबाई, सहजोबाई आदि अनेक स्त्री रचनाकारों ने रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों से अपने रूख अलग कर स्त्री वेदना और पीड़ा को व्यक्त करने के लिए निगुर्ण काव्य का मार्ग प्रशस्त किया है। इस काल के प्रमुख हस्ताक्षर घनानन्द ने श्रृंगार के वियोग पक्ष की महत्ता का प्रतिपादन किया है जिसका मूल आधार 'विरह की पीड़ा' में ही निहित है। विरह का मूल प्रेम है। प्रेम–बिरही का समूचा संसार पीड़ादायी है। वियोग के इन कवियों के काव्य में करूण, दैन्य, विवशता आदि अनेक वियोग पक्ष समाविष्ट हैं। कहना न होगा कि इस काल के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के इतर स्त्री पीड़ा, स्त्री विवशता और वेदना के स्वर स्तंभित जरूर हैं लेकिन उनका अस्तित्व नष्ट हो चुका है ऐसा मानना बिल्कुल असंगत है, क्योंकि अगर ऐसा होता तो आज जो स्त्री विमर्श का मुद्दा अनुरणित हो रहा है शायद न होता है।

आधुनिक युग के कवियों ने स्त्री के अधिकारों का समर्थन किया है। इस युग के महत्वपूर्ण कवियों में मैथली शरण गुप्त के काव्यों में नारी का सम्पूर्ण जीवन चित्रित है। उनकी कविताओं में नारी के विविध रूपों की चर्चा की गयी है। वे नारी के प्रत्येक रूप के प्रशंसक हैं। उनकी स्त्री त्याग, तपस्या और श्रद्धा का साक्षात् विग्रह है। उसका स्रष्टा होना, पालनकर्त्री और ममतामयी होना प्रत्येक रूप में दिव्यता शुचिता का बोध कराता है। गुप्त जी की नारी प्रत्येक रूप में कल्याणकारी हैं, जिसका संकेत वे इस अद्भुत कविता के माध्यम से करते है–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आँचल में है दूध और आँखों में पानी
(यशोधरा से)

इस कविता में स्त्री का वह निश्छल व पवित्रतम रूप है जिसने लोक कल्याण और लोक मंगल की भावना में प्रस्थित हो, पूरे जहान की पीड़ा को स्वयं में उड़ेल लिया। जगत की मंगलकामना के लिए पराधीनता का वरण कर लिया और पुरूष की दासी बन गयी।

छायावादी कविताओं में स्त्री उदात्त है। वह क्षमाशील है, प्रेम का प्रतीक है। श्रद्धा की पात्र है। स्त्री में उपस्थित समस्त दैवीय गुणों के आलोक में इस काल की कवितायें स्त्री अधिकारों, स्त्री सरोकारों को समर्पित है। यद्यपि निराला ओज और पौरूष के कवि हैं परन्तु उनकी कविताओं में स्त्री मन की पीड़ा का मार्मिक चित्र उपस्थित है। उनकी कविताओं में सामाजिक वैषम्य और विद्रूपता का संवेदनात्मक चित्रण किसी के भी मानसिक चित्तवृत्ति को झकझोर कर रख देता है–

पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
नत नयन, प्रिय–कर्म–रत मन
.....
उठीं झुलसाती हुई ल्
रूई ज्यों जलती हुई भू
.....
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो भार खा रोई नहीं
.....
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा
मैं तोड़ती पत्थर।''
(अनामिका से)

कविता में स्त्री के उस विशिष्ट रूप का चित्रण है जिसमें तमाम संत्रास को झेलकर भी वह अद्भुत धैर्य से अपने लक्ष्य के प्रति अचल है। निराला की नारी एक सामान्य नारी है। जिसमें सुख–दुख, राग–द्वेष, क्षमा, धैर्य, श्रम आदि सभी गुणों, अवगुणों का समावेश है। स्त्रीयोचित सारे आकर्षण और कोमलता के बावजूद वह श्रम से सुशोभित होती है। प्रकृति वैषम्य के वातावरण में भी वह 'श्रम' का आश्रय पाकर वह धन्य है। छायावादी कविताओं में स्त्री स्वर अत्यन्त मुखरित है अथवा यह कहा जा सकता है कि आज समकालीन कवितओं में जो स्त्री स्वर की मुखरता है, छायावाद उसी की पृष्ठभूमि है।

अनादि काल से स्त्री की नियति यही है कि उसका अपना अगर कोई है तो केवल वह उसकी पीड़ा है। उसका अतीत भी यही था और उसका वर्तमान भी यही है आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल सभी समयों में उसकी व्यथा ही उसकी परछाई बनकर कविता के रूप में व्यक्त हुई है। आधुनिक काल की कविताओं में स्त्री का विषाद, उसका दर्प, उसके टूटन, बिखराव आदि प्रतिबिम्बित होते हैं। कल भी वह व्यथित थी आज भी उसको पीड़ा है। अतीत में भी वह अकेली थी आज भी वह अकेले है। उसके द्वारा पूछा जाने वाला यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित ही है–

अलि कहाँ संदेश भेजूँ?
मैं किसे संदेश भेजूं?
(दीपशिखा से)

स्त्री की वेदना यहीं है कि उसे मुक्त होना है तो किससे? मुक्ति का अभिप्राय क्या है? इन संदर्भों में महादेवी वर्मा विशिष्ट कवयित्री है। उनके यहाँ भारतीय प्रवृत्तियों का एक अलग ही दर्शन है। भारतीय स्त्री विमर्श को जिस संदर्भ की आवश्यकता है, वह महादेवी जी की कविता में उपस्थित है। छायावादी कवियों की परम्परा में महादेवी जी एक सशक्त हस्ताक्षर है। उनकी कवितायें पुरूष चिन्तन के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती हैं। उनकी कवितायें स्त्री के अन्तर्मन की वेदनायें हैं। नारी जीवन की विषमताओं, टूटन, विखराव और अकेलेपन का करूण क्रन्दन हैं। जैसे–

विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली
(सान्ध्यगीत से)

मिट जाने की कल्पना, रिक्तता के उस अहसास का प्रस्फुटन है

जो सदियों से किसी ऐसे की आकांक्षा में उमड़ पड़ी है जिसमें अपना होने का मार्मिक पक्ष उपस्थित है। स्त्री की यही नियति है कि उसके अस्तित्व पर भी उसका अधिकार नहीं है महादेवी की कविता समस्त नारी जगत की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है। महादेवी जी को वस्तुतः विषाद की कवयित्री कहा जाता है। उनकी कविताओं में व्यक्त पीड़ा समूची स्त्री जाति की पीड़ा है। पुरूष और स्त्री जिनको उपनिषदों ने एक ही तेज की दो ज्योति माना जाता है सृष्टि के मूल है लेकिन एक का दूसरे के लिये उपेक्षा का भाव वेदना को जन्म देता हैं जिसमें उसकी दीनता स्पष्ट दिखायी देती है। स्त्री की घनीभूत पीड़ा जब द्रवित होती है तो कविता के स्वर फूट पड़ते हैं–

इन ललचाई पलकों पर
पहरा था जब बीड़ा का
साम्राज्य मुझे दे डाला
उस चितवन ने पीड़ का
('नीहार' से)

पराधीनता अभिशाप है। स्त्री के परिप्रेक्ष्य में जिस पुरूष को वह माँ, प्रियतमा, बेटी के रूप में समर्पित है उसी के द्वारा बेड़ियों में जकड़ दी जाती है। कविता में स्त्रीत्व को ढूँढ लेना सरल है। उसकी पराधीनता, उसका विद्रोह सभी कुछ उसकी पीड़ा में घुलकर कविताओं में चलचित्र की तरह प्रवाहमान है। महादेवी जी कहती हैं– ''मनुष्य स्वयं एक सजीव कविता है। जीवन की एकता का यह छिपा सूत्र ही कविता का प्राण है।''

समकालीन कविता स्त्री के अधिकारों उसकी मुक्ति के लिए सर्वाधिक मुखर कविता कही जा सकती है। आज की कविता में स्त्री के सभी पक्षों का दर्शन होता है। आज के साहित्य में जब सर्वत्र स्त्री विमर्श, स्त्री मुक्ति का मुद्दा विमर्शों के केन्द्र में है, तब कविता भी अपने पूर्ण प्रभुत्व के साथ स्त्री के आदर्शों, संघर्षों मुक्ति के पक्ष में स्वरित हो रही है। पुरूष रचनाकारों के अतिरिक्त स्त्री कवयित्री व रचनाकार स्त्री मुक्ति के प्रसंग को अपनी कविता में न केवल स्थान दे रहे हैं बल्कि नयी धार प्रदान कर रहे हैं। जिस तरह की कवितायें आज लिखी जा रही है, वे दकियानूसी पुरूष सत्तात्मक समाज की सच्चईयों को उधेड़कर सामने ला रही हैं। प्रस्तुत कविता स्त्री जीवन के संत्रास और विद्रूप चेहरे का सचित्र वर्णन प्रस्तुत करती है–

बारह बरस व्यथा में बीते, तेरहवें में पाँव धरे है।
पीर हृदय में, नीर नयन में, सांसो में संताप भरे है।
दंभक पाड़ित और प्रताड़ित शैशव का अभिशाप लिए है।
फूलों के नादन अधर से शूलो के अपमान दिये हैं। [8]

कविता पितृसत्तात्मक समाज के नंगेपन को उधेड़ देती है। प्रत्येक वय की कोमलता को कुचलने वाले सामाजिक जाने–बाने के बौने स्वरूप को बेपर्दा कर देती है। केदारनाथ इस युग के सशक्त हस्ताक्षर है। उनकी इस कविता में स्त्री वेदना के स्वर फूट–फूट कर फैल जाने को आतुर नजर आते हैं। इसी कोटि की एक और कविता जो नारी के कोमल मन की भावनाओं का आइना है देखिये–

मेरा भी तो मन है उड़ूँ, पंख तोलूँ
मुझे भी तो जीवन को जीने का हक है।
मेरे पंख काटो न मुझको मिटाओ
कि बन कर चिरइया चहकने मुझे दो
मैं नन्हीं कली आज खिलने को आतुर
जरा फूल बनकर मकहने मुझे दो। [9]

बन्धनों की पीड़ा को, संत्रास की वेदना को अनुभूति के स्तर तक पहुँचाती यह कविता समाज में गहरे पैठ रूढ़िपरक मानसिकताओं पर कोमल किन्तु असरदार प्रहार है। आज का समाज तो प्रगतिशील है। कतिा की यह स्वर लहरी कानों के पर्दे को चीर कर क्या समाज के कुरीतियों और कुप्रथाओं के लम्बरदारों के लम्पट हृदयों को चीर देने के लिए पर्याप्त नहीं है? क्या सदियों से स्त्री मन की घनीभूत पीड़ा का यह दाहक, मर्मभेदी स्वर आज भी अनसुनी कर दी जायेगी? समाज के प्रशस्त ललाट पर पड़ा हुआ यह धब्बा सार्वभौमिक, सार्वकालिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर समाज द्वारा आज भी गिराया जा सकेगा?

संदर्भ सूचि

1. श्याम सुन्दर दास (सं0), 2010, कबीर ग्रन्थावली, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0 – 79
2. डॉ0 रामचन्द्र तिवारी मध्ययुगीन काव्य साधना, पृ0 – 68
3. डॉ उमा चक्रवर्ती, जाति समाज में पितृसत्ता, अनुवादक– विजय कुमार झा
4. सुदर्शन चोपड़ा (संपादक), भक्त कवयित्री मीरा, हिन्दी पाकेट बुक्स दिल्ली, 2002 पृ0 – 112
5. विश्वनाथ त्रिपाठी – मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989, पृ0– 69
6. विश्वनाथ त्रिपाठी– मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1985, पृ0 105
7. डॉ0 वै0 वेंकटरमण रावः रीति कालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि पृ0 सं0 332
8. समकालीन कविता में स्त्री विमर्श, पृष्ठ सं0 – 03
9. www.shodhganga.inflibnet.ac.in
10. समकालीन कविता में स्त्री विमर्श, पृष्ठ सं0 04–05 www.shodhganga.inflibnet.ac.in